संकर्षणावतार रामानुजाचार्य

श्रीश्रीमाँ सर्वाणी

विशुद्ध चैतन्यमय परासंवित के कर्षणरूपी निवृत्ति शक्ति से जो समुद्भूत हुए हैं वे हैं ''कृष्ण''; सब को आकर्षण करना ही इनका स्वभाव हैं। आकर्षण करने की 'इच्छा' या एषणा स्वभाव से जिनका उद्भव है, वे हैं ''शेष'', वह ही है ''संकर्षण'' एवं वे ''बलदेव'' नाम से अभिहित होते हैं। ''संकर्षण'' अथवा सम अर्थ से सम्यक सदृश एवं कर्षण अर्थ से आकर्षण समझना होगा। कृष्ण की आकर्षण शक्ति ही दिव्यरूप परिग्रह करते हुए ''संकर्षण'' हुआ। 'शेष' शब्द के 'श' अक्षर से शत समझना होगा। शतधारा में एषणा का चरम प्रकाश ही है ''शेष''। अर्थात् विशुद्ध-सत्त्व के इच्छा के समष्टिभूत शक्ति का सगुण-प्रकाश रूप ही है ''शेष''। संकर्षण शक्ति या कर्षण शक्ति कहने से क्षेत्र को क्षुब्ध करने की शक्ति या कर्षण शक्ति को ही समझना होगा। इसीलिए संकर्षण या बलराम के हस्त में हल धारण करते हुए देखा जाता है। ''बलराम'' शब्द का अर्थ है, बल – शक्ति, राम – रम, क्रीड़ा करना अर्थात जो रमा के साथ रमण करते है वह ही ''राम'' शब्दवाच्य है।

रमा चंचला प्राणशक्ति हैं; ये ही आद्या प्रकृति हैं। इस चंचला प्राणशक्ति के मध्य जो स्थिरावस्था रूपी क्रीड़ा की अवस्था है, वही बलराम पदवाच्य है। यह ही शुक्ल यजुः है। शरीर रूपी क्षेत्र के कर्षण द्वारा आत्मोन्नति लाभ होती है। बलरामरूपी क्षेत्रकर्षणकारी गुरुरूपी कृषक ही क्षेत्रज्ञ पदवाच्य है। प्राण के स्थिरावस्थारूपी परमात्मा ही क्षेत्रज्ञ और जीव के जीवन स्वरूप प्राण ही श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण अर्थात् ''कृष्'' धातु, अर्थात् कर्षण कर्मरूपी कृषिकर्म को समझना होगा; अर्थात्, प्रत्येक जीव देह में अजपारूपी क्रिया स्वभावतः जो चल रही है वह ही कृषिकर्म है। इस कृषिकर्म की निवृत्ति अवस्था ही ''कृष्ण'' पदवाच्य है। यही कृष्ण यजुः है।

पुराणों में कहा गया है कि पातालादि के निम्नभाग में विष्णु भगवान की ''शेष'' नामक तामसी तनु हैं। सिद्धगण उसको अनन्त कहते हैं। वे है सहस्रशिरः एवं मस्तक का चिह्न उनका भूषण स्वरूप है। वे जगत्हितार्थ सहस्र फणों द्वारा दशदिशाएं आलोकित करते हुए असुरादि की बलहानि कर रहें हैं। उनके एक हस्त में हल एवं दूसरे हस्त में मुषल है। लक्ष्मी देवी व वारुणी देवी मूर्तिमती होकर उनकी परिचर्या करती हैं। कल्पान्त में उसके शरीर से ''संकर्षण'' नामक रुद्र निष्क्रान्त होकर त्रिजगत् नाश करते हैं। ये ''शेष'' अथवा अनन्त की क्रोड़ में ही भगवान श्रीहरि अनन्त शय्या पर शायित रहते हैं। – ''शांताकारं-भुजग-शयनं पद्मनाभं सुरेशं।''

सगुण ब्रह्म सनातन श्रीकृष्ण अनादि आत्मा, प्रकृति के अतीत निर्गुण पुरुष प्रभु है; भगवान पृथक-पृथक तेजः सम्पन्न स्वयं ज्योति व निरंतर रममाण है। ये तेजस्वी संहार कारकगणों के भी संहारक ईश्वर हैं। माया व महत्तत्वादि के प्रभाव इनमें नहीं है, गुण की बात ही क्या? मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार कभी इनमें प्रविष्ट नहीं कर सकते। इन के मध्य से सर्वप्रथम अतिश्वेत देह दीर्घकाय ''शेष'' समुत्पन्न होते है; इस शेष की क्रोड़ में ही महालोक गोलोक अवस्थित है। गोलोक में श्रीराधा व सखागण-सह श्रीकृष्ण जहाँ विराजते है, उसी के उत्तर दिशा में हरि चंदन वन में मणिमंडप शोभित स्वर्णपीठोपरि स्वर्णसिंहासन पर रेवती देवी सह संकर्षण, हलायुध बलराम या बलदेव विराजमान रहते हैं। वे श्रीकृष्ण के अतिशय प्रिय हैं। इनके गात्रवर्ण विशुद्ध स्फटिक सदृश, नयन युगल रक्तिम पद्मपलाशवत् एवं ये नीलाम्बर परिधान करते हैं। वे दिव्य भूषणादि धारण करते है। संकर्षण, श्रीकृष्ण के एक प्रधान सहचर है। त्रेतायुग की श्रीश्रीरामलीला में रामानुज लक्ष्मण एवं द्वापर युग की श्रीश्रीकृष्णलीला में श्रीकृष्ण के अग्रज बलराम थे अनन्तदेवरूपी संकर्षण देव का अवतार।

भारत के दक्षिण दिशा में पूर्व समुद्रतटवर्त्ती श्रीपेरेम्बुदुर या श्रीमहाभूतपूरी नामक एक गाँव है। बहुकाल पूर्व से ही इस स्थान पर अनेकानेक द्राविड़ ब्राह्मण जाति का निवास

स्थल था। आजतक द्राविड़ ब्राह्मणगण वेदविद्या कुशल, सदाचार सम्पन्न एवं निष्ठावान के रूप में सर्वत्र सम्मानित हैं। आसुरी केशवाचार्य दीक्षित इस द्राविड़ गाँव के एक निवासी थे। ये अतिशय यज्ञनिष्ठ थे इसीलिए पंडितों ने इनको ''सर्वक्रतु'' उपाधि से विभूषित किया था। परवर्तीकाल में इन्होंने श्रीरंगम् के ''विशिष्टाद्वैत'' मत के प्रतिष्ठाता सिद्धाचार्य यामुनाचार्य से दीक्षा प्राप्त की थी। श्रीशैलपूर्ण नामक एक व्यक्ति यामुनाचार्य के अन्य प्रधान एवं प्रिय शिष्य थे। केशवाचार्य ने श्रीशैलपूर्ण की भगिनी कान्तिमती देवी से विवाह किया था।

विवाह के पश्चात् काफी दिन अतिवाहित होने पर भी जब केशव को कोई सन्तानादि नहीं हुई तब अंतत: केशव ने सोचा कि यज्ञ द्वारा श्रीभगवान को तुष्ट कर सकने से निश्चय ही पुत्रमुख का दर्शन होगा। इसी समय एकदिन उन्होंने चन्द्रग्रहण के अवसर पर स्वस्त्रीक, कैरविणी सागर-संगम में स्नानार्थ गमन किया। वहाँ प्रसिद्ध पार्थसारथि का मन्दिर नजदीक था। वे स्नानान्त श्रीमूर्ति के दर्शनार्थ मन्दिर में आए। भगवद्-दर्शन के पश्चात् उन्होंने सोचा – यहाँ पर भगवत् समीप ही पुत्रार्थ एक यज्ञानुष्ठान किया जाए। मन: संकल्प कार्य में परिणत हो गया। उन्होंने पार्थसारथि के समक्ष, मन्दिर-संलग्न सरोवरतीर पर पुत्र लाभार्थ एक यज्ञानुष्ठान किया। उसी दिन रात्रिकाल में केशव ने स्वप्न देखा – भगवान पार्थसारथि उसको सम्बोधनपूर्वक कह रहे हैं, ''हे सर्वक्रतो! मैं तुम्हारे प्रति अतीव सन्तुष्ट हुआ हूँ। तुम्हारी मनोवांछा पूर्ण होगी। जगत् में धर्म संस्थापनार्थ मुझे अवतार ग्रहण करना आवश्यक हो गया है। अतएव मुझको ही तुम पुत्र के रूप में प्राप्त होओगे। स्वप्न दर्शन से केशव अत्यंत प्रसन्न हुए और मन ही मन यह दृढ़ निश्चय किया कि इसबार श्री भगवान की कृपा से उन्हें अवश्य ही पुत्रलाभ होगा।'' यथासमय उनकी पत्नी कांतिमति का गर्भलक्षण प्रकट हुआ। तत्पश्चात् ९४१ शकाब्द सौर बैसाख मास की शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि के शुभक्षण में कांतिमति ने एक पुत्ररत्न प्रसूत किया। यही वे परमभागवत भगवान अनन्तदेव के अवतार श्री रामानुजाचार्य हैं। श्री रामानुजाचार्य का सन्यास ग्रहण के पूर्व नाम था ''लक्ष्मण''। अष्टमवर्ष में प्रवेश करते ही उपनयन संस्कारोपरांत उनके पिताश्री ने स्वयं ही पुत्र का शिक्षाभार ग्रहण किया। बालक लक्ष्मण की बुद्धि असाधारण रूपसे तीक्ष्ण थी। विद्याभ्यास के क्रम में उनकी असाधारण प्रतिभा प्रतिलक्षित हुई। इसके अलावा धर्मानुष्ठान में और धार्मिक सत्संग में उनका विशेष अनुराग प्रकट होता था।

इसी समय काँचीनगर के सन्निकट पूनामेलि ग्राम में ''काँचीपूर्ण नामक शूद्रकुलजात एक परमभागवत वास करते थे। इनकी भक्ति और निष्ठा सर्वविदित थी। बहुत लोगों का मानना था कि विष्णुकाँची में प्रतिष्ठित भगवान श्री ''वरदराज'' काँचीपूर्ण के सम्मुख प्रकट होते थे। पुन: बहुत लोग अपनी-अपनी मनोकामना संबंधी प्रश्नों के उत्तर हेतु उन्हें वरदराज से प्रार्थना का अनुरोध करते थे। काँचीपूर्ण प्रतिदिन भगवत् पूजार्थ पूनामेली से काँचीपूर्ण तक आवागमन करते थे। पूनामेली का रास्ता श्रीपेरम्बदूर के मध्य से होते हुए लक्ष्मण के गृह के समीप से गुजरता था। अतएव प्रतिदिन काँचीपूर्ण को लक्ष्मण के निवास के समीप से यातायात करना पड़ता था।

एकदिन सायंकाल में जब लक्ष्मण अपने गृह के सम्मुख वाले रास्ते पर विचरण कर रहे थे, तब उन्होंने काँचीपूर्ण को उसीपथ पर जाते हुए देखा। काँचीपूर्ण की मुखज्योति ने लक्ष्मण के चित्त को आकर्षित किया। वे काँचीपूर्ण की तरफ मुग्ध नयनों से अपलक देखते रहे। बालक की कोमल मुखकांति और महापुरुषोचित लक्षणों को परखकर काँचीपूर्ण भी पुन: पुन: उसकी तरफ देखने लगे, और निकट आकर उनका परिचय पूछा। लक्ष्मण ने अपना परिचय देकर काँचीपूर्ण को उसदिन अपने गृह में भोजन करने हेतु अनुरोध किया। उसके इस आग्रह को काँचीपूर्ण अस्वीकार न कर सके। काँचीपूर्ण के लक्ष्मण के गृह में प्रवेश करने पर, लक्ष्मण ने उनको बैठने का आसन प्रदान कर, द्रुतगति से अपने पिताश्री के पास जाकर कहा, ''पिताजी, मैंने इस महापुरुष को निमंत्रित किया है, इनको आज हमलोग अपने ही गृह में आतिथ्य प्रदान करेंगे।'' केशव काँचीपूर्ण से पूर्व परिचित थे। इसीलिए उन्होंने कहा, ''वे बहुत ही उत्तम, एक परमभागवत हैं। उनकी यत्नपूर्वक सेवा करो।'' इतना कहकर केशव ने आकर काँचीपूर्ण से सविनय अभ्यर्थना की। तदन्तर भोजन के समय लक्ष्मण ने काँचीपूर्ण को आग्रहपूर्ण यत्न से भोजन कराया एवं तदुपरांत उनके शयन की व्यवस्था कर चुकने पर उनकी पदसेवा को उद्यत हुए। काँचीपूर्ण लक्ष्मण के आचरण से अतीव चमत्कृत हुए। उन्होंने व्याकुलता पूर्वक लक्ष्मण को पदसेवा से विरत करते हुए

कहा, – ''वत्स! मैं नीच शूद्र हूँ और तुम सद् ब्राह्मण तनय एवं वैष्णव हो, कहाँ मुझे तुम्हारी पदसेवा करनी चाहिए, कहाँ तुम मेरी पदसेवा को उद्यत हो। छि:! ऐसा काम मत करना।'' इस वार्त्ता से लक्ष्मण लज्जित हो गए और रूक गये। परन्तु मन ही मन दुखित होकर बोले – ''क्यों प्रभु! सुना है शास्त्रों मे वर्णित है कि जो परम हरिभक्त है वे ही प्रकृत ब्राह्मण हैं। देखिए न 'तिरूपन्न अलवार' चंडाल होते हुए भी ब्राह्मणों के पूजनीय थे। आप जब परम-भागवत हैं तब आपकी पदसेवा करने में क्या दोष है?'' लक्ष्मण की बातें सुनकर काँचीपूर्ण स्तंभित हो गए। सोचा, 'यह बालक कदापि सामान्य मानव नहीं हो सकता। भविष्य में यह निश्चय ही भव-कर्णधार होगा।'

लक्ष्मण और काँचीपूर्ण का मिलन भले ही एक दिन के लिए हुआ हो; परन्तु इस मिलन की छाप लक्ष्मण के हृदय पर आजन्म अंकित हो गयी। रामानुज में दास्यभक्ति एवं विशिष्टाद्वैत मत का बीज इसी स्थान पर रोपित हुआ।

तत्पश्चात् अनेक घात-प्रतिघातों के मध्य लक्ष्मण का जीवन अतिवाहित होता जा रहा था। षोड़श् वर्षीय अवस्था में घटित दो घटनाओं ने, इनके जीवन की गति को परिवर्तित कर दिया, प्रथम उनका विवाह एवं द्वितीय पितृवियोग। पितृवियोग के पश्चात्, लक्ष्मण काँचीपूर के अद्वैत मतावलम्बी श्रीयादवप्रकाश के निकट विद्याभ्यास करने लगे। कुछ काल पश्चात् विद्या के विषय पर गुरु से इनका मतभेद होने लगा। बारम्बार मतभेद होने से, एवं शिष्य को गुरु से अधिक प्रतिभाशाली जानकर, श्रीयादवप्रकाश ने तब छल प्रपंच से लक्ष्मण के प्राणनाश की चेष्टा की। परन्तु भगवान जिसपर कृपा करते है उसे कौन मार सकता है? भगवत् कृपा से लक्ष्मण की प्राण रक्षा हुई। सघन वन के मध्य व्याध एवं व्याधपत्नि के रूप में भगवान ने लीला-छल के द्वारा दर्शन देकर उनकी प्राण-रक्षा की। यहीं से लक्ष्मण के जीवन की गति परिवर्तित हो गयी। वे पुन: अपने गृह में माँ के पास वापस आ गये। माता के सम्मुख सारी घटना वृतांत को वर्णित करने पर, लक्ष्मण की माँ वरदराज की पूजा करने को व्याकुल हो उठी। वे समझी कि वरदराज की कृपा से ही यादव प्रकाश की दुरभिसन्धि से वे अपने प्राणप्रिय पुत्र को वापस पा सकी है। तब लक्ष्मण को साथ लेकर वरदराज की पूजा करने हेतु, कांतिमति चली। वहाँ पर काँचीपूर्ण के साथ उनका साक्षात् हुआ सारी बातें सुनकर काँचीपूर्ण ने लक्ष्मण से कहा, ''वत्स, भगवान वरदराज तुमपर अतिप्रसन्न हैं, इसीलिए तुम अभी से ही उनकी सेवा में लग जाओ एवं नित्य उस शाल कूप से एक कलश जल लाकर इनको स्नान कराओ। अतिशीघ्र तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी।'' भक्तानुरागी लक्ष्मण परमभागवत काँचीपूर्ण के उपदेश को शिरोधार्य कर निर्देशानुसार वरदराज की सेवा करने लगे। इसके बाद लक्ष्मण, दिनों दिन काँचीपूर्ण के साथ भक्ति माधुर्य का अनुभव करने लगे एवं इसीक्रम में वे इतने मुग्ध हो गये कि काँचीपूर्ण से उन्होंने दीक्षा की याचना की। परन्तु काँचीपूर्ण ने उन्हें दीक्षा प्रदान नहीं की। तथापि लक्ष्मण ने मन ही मन काँचीपूर्ण को ही गुरुरूप में वरण किया। परिणामस्वरूप दोनों की सख्यता और भी दृढ़ हुई। धीरे-धीरे लक्ष्मण की बात सर्वत्र प्रचारित होने लगी। श्रीरंगम् के प्रसिद्ध वृद्ध महात्मा श्रीयामुनाचार्य ने भी एकदिन किसी एक वैष्णव से लक्ष्मण के विषय में जाना। यामुनाचार्य ने सोचा ''इतने दिवसोपरांत भगवान ने मेरी प्रार्थना सुनी है। जिस तरह से सुन रहा हूँ ऐसा लगता है कि यह लक्ष्मण ही भविष्य में समग्र वैष्णव सम्प्रदाय के गुरु पद को प्राप्त कर सकेगा।'' यह सोचकर लक्ष्मण को देखने की इच्छा से श्रीयामुनाचार्य तब श्रीवरदराज के दर्शन हेतु आये। वहाँ पर काँचीपूर्ण ने श्रीयामुनाचार्य को, दूर से ही लक्ष्मण को दिखाया यामुनाचार्य लक्ष्मण की सौम्यमूर्त्ति देखकर उसके प्रति आकृष्ट तो हुए परन्तु लक्ष्मण को बुलाकर उससे वार्त्तालाप नहीं किया। क्या सोचकर उन्होंने लक्ष्मण से वार्त्तालाप नहीं किया, यह स्थूल बुद्धि के समझ के परे था। यामुनाचार्य लक्ष्मण के साथ वार्त्तालाप न करके भी, लक्ष्मण को स्वमत में लाने हेतु नित्य वरदराज के पास आकुल होकर कृपा की भीख माँगने लगे। संभवत:! उस हृदयविदारक व्याकुलतापूर्ण प्रार्थना के फलस्वरूप ही लक्ष्मण भविष्य में जगद्गुरु रामानुजाचार्य के रूप में प्रकटित हुए थे। लक्ष्मण के अवतारभाव के विकास हेतु, यामुनाचार्य की ऐसी सात्विक प्रार्थना एक प्रधान हेतु हुई।

परवर्तीकाल में पूर्व गुरु यादवप्रकाश के साथ अन्य विविध अप्रिय घटनावली के कारण माता के आदेश से लक्ष्मण ने काँचीपूर्ण को ही अपना पथ प्रदर्शक निर्वाचित कर लिया। लक्ष्मण ने पहले ही काँचीपूर्ण को मन ही मन गुरुरूप में वरण कर लिया था, यादव प्रकाश के पुन: संग के प्रभाव से उनकी वह निष्ठा थोड़ी बहुत व्यतिक्रम हुई थी।

इस घटना के कुछ दिनों के पश्चात् लक्ष्मण का मातृवियोग हुआ। उन्होंने अपनी प्रज्ञा के बल पर बहुत कष्ट पूर्वक इस शोक का संवरण किया। दूसरी तरफ श्रीरंगम् में यामुनाचार्य का शरीर अस्वस्थ हो गया। यामुनाचार्य ने किसी व्यक्ति के माध्यम से काँचीपूर्ण और लक्ष्मण का समाचार पाया। यादव प्रकाश के साथ लक्ष्मण के चिर-विच्छेद का समाचार पाकर उन्होंने अविलम्ब महापूर्ण नामक अपने एक शिष्य को, लक्ष्मण को अपने पास बुला लाने के लिए भेजा। महापूर्ण काँचीपूर में पहुँचकर काँचीपूर्ण की सहायता से लक्ष्मण के साथ साक्षात् कर महात्मा यामुनाचार्य के संदेश को सुनाया। सुनकर लक्ष्मण ने कहा – ''महामुनि यामुनाचार्य? अहा, मेरे भाग्य में क्या उस महापुरुष का दर्शन लिखा है?'' महापूर्ण के उनको ले जाने की इच्छा को जान कर, वे वरदराज की स्नान सेवा के पश्चात् वहाँ से श्रीरंगम को प्रस्थान किए। परन्तु भगवान की लीला को कौन जान सकता है? चार दिनों तक लगातार यात्रा के पश्चात् जब लक्ष्मण और महापूर्ण श्रीरंगम के समीप की कावेरी नदी के तट पर उपस्थित हुए, तब उन्होंने नदी के दूसरी तरफ अपार जन समुदाय को देखा। पूछने पर पता चला कि, महात्मा यामुनाचार्य ने परमपद् प्राप्त कर लिया तथा नदी-तट पर उन्हीं की अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न हो रही है। यह बात सुनते ही लक्ष्मण संज्ञाहीन होकर भूमि पर गिर पड़े एवं महापूर्ण ने आकर उनके ऊपर जल के छीटों से उनकी चेतना लौटायी एवं नानाप्रकार से सान्त्वना प्रदान किया। कुछ समय के उपरांत लक्ष्मण के शोक संवरण होने पर, उन दोंनो ने नदी पार कर समाधि-स्थल पर आकर देखा कि उस समय भी यामुनाचार्य की वह दिव्यमूर्ति विराजमान है। लक्ष्मण ने तब उस श्री विग्रह को अच्छी तरह से निरीक्षण करने पर देखा कि महामुनि के दक्षिण हस्त की तीन अंगुलियाँ मुष्टिबद्ध है। मृत्युकाल में सारे अंग ही शिथिल एवं विस्तृत हो जाते हैं। किन्तु जबतक अंगादि शिथिल नहीं होते तब तक कभी-कभी जीवन का अंश रह जाता है। तब लक्ष्मण ने मुनिवर के शिष्यों से यह जिज्ञासा की कि मुनिवर की दाहिने हाथ की तीन अंगुलियाँ स्वभावत: मुष्टिबद्ध रहती थी क्या? शिष्यों ने देहावसान काल की घटना का वृतांत बताया एवं तदनुयायी दृढ़प्रतिज्ञ हो कर लक्ष्मण ने सर्वसमक्ष यह घोषणा की कि यामुनाचार्य के हृदयाभिलषित तीन अंतिम वासनाओं को वह सत्य रूप प्रदान करेंगे। आश्चर्य का विषय यह था कि लक्ष्मण के मुखाश्रित वाक्य जैसे-जैसे एक-एक करके उच्चरित होने लगे, वैसे-वैसे समाधिस्थ महामुनि यामुनाचार्य की तीनों अंगुलियाँ एक-एक कर खुल गयी! सभी लोग इस घटना को देखकर आश्चर्यचकित हो गए। तदनन्तर लक्ष्मण काँचीपूरी में अपने गृह आकर स्वपत्नि को सान्त्वना देकर काँचीपूर्ण के पास चले आए एवं यामुनाचार्य के विषय में बातें करते हुए समय अतिवाहित किया। लक्ष्मण अब से अधिकांश समय काँचीपूर्ण के साथ ही बिताते थे। इस बार उन्होंने दृढ़-संकल्प किया कि जैसे भी हो काँचीपूर्ण के द्वारा ही दीक्षा ग्रहण करूँगा। इस बात को मन में रखकर उन्होंने काँचीपूर्ण को अपने घर भोजन के लिए निमंत्रित किया। अन्तर में यह इच्छा थी कि काँचीपूर्ण के उच्छिष्टान्न को ग्रहण करके वे उनसे दीक्षा की याचना करेंगे। किन्तु काँचीपूर्ण के लक्ष्मण के मनोगत भाव को जानकर घटना-प्रवाह को कौशल पूर्वक अन्य प्रकार से परिचालित करने के कारण लक्ष्मण के भाग्य में प्रसाद भक्षण तो नहीं हुआ, परन्तु तब से काँचीपूर्ण के प्रति उनकी श्रद्धा और अधिक बढ़ गयी। वे समझ गये कि काँचीपूर्ण ने उनके मनोगत भाव को समझकर कौशल पूर्वक प्रसाद भक्षण से वंचित कर दिया। जो भी हो, जैसे भी हो उनसे ही मंत्र दीक्षा प्राप्त करना है।

दूसरी तरफ काँचीपूर्ण ने लक्ष्मण के आचरण को देखकर सोचा –''यह प्रभु की ही लीला हैं। हाय! कहाँ मैं भक्त का दासत्व करते हुए जीवन बिताऊंगा, ना लक्ष्मण की तरह भक्त मेरा उच्छिष्ठ प्रसाद खाना चाहता है, शिष्य होकर पदसेवा करना चाहता है।'' यह सोचकर उन्होंने व्यथित चित्त होकर वरदराज से कहा, ''प्रभु! मुझे तिरुपति जाने के लिए अनुमति प्रदान करिए; वहाँ जाकर मैं आप के बालाजी मूर्ति की सेवा करूँगा। यहाँ और नहीं। हो सकता है यहाँ मुझसे कभी कुछ वैष्णव-अपराध हो जाये, क्या पता?'' काँचीपूर्ण वरदराज सिद्ध थे। वरदराज उनके साथ मनुष्य की तरह वार्त्तालाप करते थे। अतएव उन्होंने काँचीपूर्ण को तिरुपति जाने के लिए अनुमति दे दी। इस प्रकार से प्राय: छ: महीने बीत जाने पर बालाजी ने एकदिन काँचीपूर्ण को काँचीपूरी में लौट कर वरदराज की सेवा कार्य पुन: आरम्भ करने के लिए कहा। बहुत दिनों के बाद काँचीपूर्ण को वरदराज के मन्दिराभिमुख गमन करते हुए देखने से लक्ष्मण आनन्द से विह्वल होकर उनके निकट आकर एकदम निर्वाक् उनके चरणों पर पतित हो गए एवं कहा – ''भगवान!

आपको मेरा उद्धार करना ही होगा। आपसे भिन्न मेरी और गति नहीं है। आपके मुझपर दया न करने से मुझे भक्ति मार्ग का दर्शन कौन करायेगा? इतने शास्त्रों की चर्चा करते हुए भी मेरा सन्देह दूर न हुआ; अतएव यदि आप मेरा उद्धार न करें तो मेरे लिए और कोई उपाय नहीं है।''

प्रकृत भक्त कभी दूसरे भक्त का दु:ख देख नहीं सकता। काँचीपूर्ण भी लक्ष्मण के लिए खूब उद्विग्न हो उठे। उन्होंने लक्ष्मण को कहा – ''वत्स! तुम सोचो मत। आज ही मैं वरदराज से तुम्हारे विषय में जिज्ञासा करूँगा। वे ही तुम्हें गुरु की प्राप्ति करा देंगे। वे ही तुम्हारे मन के सकल संशय का नाश कर देंगे। देखो, मैं एक शूद्र हूँ, मेरे द्वारा तुम्हें दीक्षा प्रदान करने से आचार विरुद्ध कर्म होगा। आचार विरुद्ध कर्म करने से लोक समाज में निन्दनीय होना पड़ता है। तुम चिन्ता मत करो, भगवान वरदराज तुम्हारी व्यवस्था करेंगे।'' उस दिन लक्ष्मण तत्क्षण कथंचित् आश्वस्त हुए एवं परदिवस प्रात: में काँचीपूर्ण के मुख से श्रीवरदराज की अभय वाणी सुनने के लिए अतीव उत्कंठित हो उठे।

क्रमश: निशीथकाल समागत हुआ। काँचीपूर्ण उस निर्जन मंदिर गृह में सुवृहत् तालवृंत लेकर भगवान की सेवा में नियुक्त रहे। कुछ क्षण पश्चात् भक्तवत्सल भगवान वरदराज ने काँचीपूर्ण को सम्बोधित करते हुए कहा – ''वत्स! तुम जैसे मुझे कुछ कहने के लिए उत्सुक हो उठे हो, ऐसा देख रहा हूँ। कहो, तुम्हारी जिज्ञासा क्या है?'' काँचीपूर्ण ने भक्ति गद्गद् चित्त से प्रणति पूर्वक कहा – ''प्रभु! आप तो सर्वान्तर्यामी हैं; आप से तो सब कुछ अवगत ही हैं। आज मैं लक्ष्मण के कतिपय मानसिक प्रश्नों के उत्तर के लिए आप के निकट कृपा भिक्षा कर रहा हूँ।'' वरदराज ने कहा – ''हाँ, वत्स! मुझसे सबकुछ ही अवगत है। आर्य रामानुज लक्ष्मण मेरा परमभक्त है; तुम सत्वर उनको ये सारी बात कहो। – १) अहमेव परंब्रह्म जगत्-कारण कारणम्–(मैं ही जगत् के कारण का कारण परमब्रह्म हूँ)। २) क्षेत्रज्ञेश्वर्योर्भेद: सिद्ध एव महामते।–(जीव व ईश्वर का भेद सत्य है)। ३) मोक्षो पायो न्यास एव जनानां मुक्ति मिच्छताम्।–(मुमुक्षुजन के लिए मोक्षोपाय सर्वसन्यास अर्थात् प्रपत्ति है।) ४) मद्भक्तानां जनानांच नान्तिम–-स्मृतिरिष्यते।-(मेरे भक्त की अन्तिम स्मृति निष्प्रयोजन है।) ५) देहावसाने भक्तानां ददामि परमं पदम्।-(मेरे भक्त के देहावसान काल में मैं उसको परमपद प्रदान करता हूँ।) ६) पूर्णाचार्य महात्मनं समाश्रय गुणाश्रयम्।–(महात्मा महापूर्ण को गुरुपद में वरण करो।)''

प्रभात होने के पहले ही लक्ष्मण काँचीपूर्ण के निकट उपस्थित हो गए। उसे देखते ही काँचीपूर्ण ने कहा – ''वत्स रामानुज ! तुम धन्य हो। भगवान ने तुम्हारे प्रश्न का इस प्रकार उत्तर प्रदान किया हैं।'' यह कहकर उन्होंने लक्ष्मण को वरदराज के सारे आदेश निर्देश क्रमानुसार में बताये। वरदराज के लक्ष्मण को ''रामानुज'' नाम से अभिहित करने से तब काँचीपूर्ण ने भी उसे 'लक्ष्मण' न कहते हुए ''रामानुज'' कहकर ही सम्बोधित किया। काँचीपूर्ण श्रीभगवान के नित्यसिद्ध नित्यभक्त के मध्य अन्यतम एकजन थे। वे प्रथम से ही लक्ष्मण के मध्य भगवत्-लक्षणावली और गुणावली समस्त लक्ष्य करते हुए समझ गए थे कि ''लक्ष्मण'' ईश्वर कोटि की भगवत्-सत्ता है। इस कारण, वह भक्त होकर भगवान को कैसे दीक्षाप्रदान कर सकेंगे। भक्त कभी भगवत्सत्ता को दीक्षादान नहीं कर सकता, जबतक वह साक्षात् भगवान का निर्देश न प्राप्त करें। इसीलिए सामाजिक शास्त्रीय विधि-निषेध प्रदर्शन करते हुए काँचीपूर्ण ने लक्ष्मण को दीक्षा नहीं दी। इस स्थल पर यह प्रमाणित होता है कि काँचीपूर्ण कितने बड़े एक परम भागवत् थे; दूसरी ओर वरदराज का निर्देश यह प्रमाण करता है कि 'लक्ष्मण' साक्षात् 'संकर्षण' रूपी भगवान श्रीराम के अनुज अनन्तदेव के अवतार है। क्रमश: इस वृत्तान्त का जनसमक्ष में प्रचार हो जाने के बाद से ही सबलोग लक्ष्मण को रामानुज नाम से पुकारने लगे। इस प्रकार से फिर लक्ष्मण ''रामानुज'' हुए।

श्रीनित्यानंद प्रभु

रामानुजाचार्य के परवर्ती काल में जगत् कल्याण करने के लिए और दो संकर्षणावतारों ने जगत् में अवतार धारण किया था। वे हैं महाप्रभु श्रीकृष्ण चैतन्यदेव के पार्षद श्रीनित्यानंद प्रभु एवं तत्परवर्ती वैष्णव शिरोमणि श्री चरणदास बाबाजी। इस दोनों महात्माओं तथा उनके जीवन लीला के माध्यम से प्रमाण हुआ था कि वे साक्षात् संकर्षणादेव रूपी बलराम के अवतार थे।

हिन्दी अनुवाद – मातृचरणाश्रित श्रीविमलानन्द